एक और महिला पत्रकार ने सुनाई संपादक अकबर की "डर्टी ट्रिक्स" की दास्तान, कहा-टार्चर चैंबर बन गया था दफ्तर

गजाला वहाब

जैसे ही MeToo आंदोलन भारत में शुरू हुआ, मैंने 6 अक्तूबर को ट्वीट किया कि "मुझे इस बात का इंतजार है जब mjakbar के बारे में बाढ़ का दरवाजा खुलेगा।" बहुत जल्द ही मेरे दोस्त और "एशियन एज" जहां एमजे अकबर संपादक थे जब मैंने 1994 में इंटर्न के तौर पर ज्वाइन किया था, के पुराने सहयोगी मुझ तक पहुंच गए। उन्होंने कहा कि तुम अपनी 'अकबर स्टोरी' को क्यों नहीं लिखती हो? मैं इस बात को लेकर निश्चित नहीं थी कि क्या दो दशकों बाद उसे लिखना किसी भी रूप में उचित होगा। लेकिन जब संदेशों के जरिये दबाव बढ़ने लगा तब मैंने इसके बारे में सोचा।

मैंने वीकेंड में उन डरावने छह महीनों का अपने दिमाग में फिर से रिप्ले किया। कुछ ऐसा था जिसे मैंने अपने दिमाग के बहुत दूर के एक कोने में बंद कर रखा था लेकिन वो अभी भी मेरे लिए रोंगटे खड़े कर देना वाला है। किसी एक बिंदु पर मेरी आंखें गीली हो गयीं और मैंने खुद को बताया कि मैं एक पीड़ति के तौर पर नहीं जानी जाऊंगी;

ये कि 1997 के वो छह महीने मेरे लिए कुछ नहीं हैं और वो किसी भी रूप में मेरी शख्सियत को परिभाषित नहीं करते हैं। मैंने तय किया कि मैं अपने ट्वीट को नहीं फालो करूंगी। इस चीज का पता लगाना एक बात है कि आपके आदर्श की प्रवृत्ति बुनियादी तौर पर जानवर की है लेकिन उसे दुनिया को बताना बिल्कुल दूसरी बात है। संदेश लगातार आ रहे थे। कुछ का कहना था कि क्या पता मेरी कहानी कुछ और लोगों को सामने आने का साहस दे दे। इसलिए पेश है मेरी कहानी।

1989 में जब अभी मैं स्कूल में ही थी, मेरे पिता ने अकबर के "रायट्स आफ्टर रायट्स" की एक कॉपी भेंट की। मैं दो दिन में ही किताब चट कर गयी। उसके बाद मैंने "इंडिया- दि सीज विथइन" और "नेहरू- दि मेकिंग ऑफ इंडिया" खरीदी। मैंने धीरे से "फ्रीडम एट मिडनाइट", "ओ जेरुसलम एंड इज पेरिस बर्निंग" को एक तरफ किनारे कर दिया। मेरे पास अब अपना एक चहेता लेखक था।

हालांकि अभी जब कि मैं ठीक से एक शब्द को बोल भी नहीं पाती थी तभी मैंने जर्नलिस्ट बनना तय कर लिया था। अकबर की किताबों से परिचित होने के बाद ये इच्छा अब पैशन में बदल गयी। इसलिए मैंने अपना फोकस नहीं ढीला किया। स्कूल के बाद जर्नलिज्म के बैचलर कोर्स में मैंने दाखिला ले लिया। जब नौकरी के लिए 1994 में मैं "एशियन एज" के दिल्ली स्थित दफ्तर में पहुंची तो मैं इस बात से पूरी तरह से सहमत थी कि मुझे यहां लाने का काम नियति ने किया है। जिससे इस पेशे के सबसे अच्छे लोगों से सीख सकूं।

लेकिन सीख को भी इंतजार करना था। पहला, भ्रम को बिखरना था। अकबर अपनी विद्वता को हल्के से ओढ़ते थे। छोटे में कुछ हल्के से। वो चिल्लाते थे, कसमे खाते थे और दफ्तर में शराब पीते थे। एक वरिष्ठ सहयोगी ने मेरी खिंचाई करते हुए कहा कि "तुम भी एक छोटे कस्बे वाली हो।" इसलिए मैं अपने छोटे कस्बे वाली मानसिकता को हजम कर गयी और अगले दो सालों तक हर चीज को दफ्तर की संस्कृति के तौर पर स्वीकार कर लिया- अकबर का युवा सब एडिटरों के साथ फ्लर्ट करना, उनका भीषण पक्षपात और उनके बेवड़े वाले चुटकुले।

मैंने सुना कि लोग "एशियन एज" के दिल्ली दफ्तर को अकबर का हरम कहकर बुलाते हैं- वहां पुरुषों के मुकाबले युवा महिलाएं ज्यादा थीं। और मैं दफ्तर के गपशप में अक्सर उनकी सब एडिटरों/रिपोर्टरों के साथ के अफेयर सुना करती थी। या फिर "एशियन एज" के हर रिजनल दफ्तर में उनकी एक गर्लफ्रेंड थी। मैं इन सब को दफ्तर की संस्कृति समझ कर सरका देती थी। मैं उनके ध्यान से दूर हाशिये पर थी और अभी भी किसी तरह से प्रभावित नहीं थी।

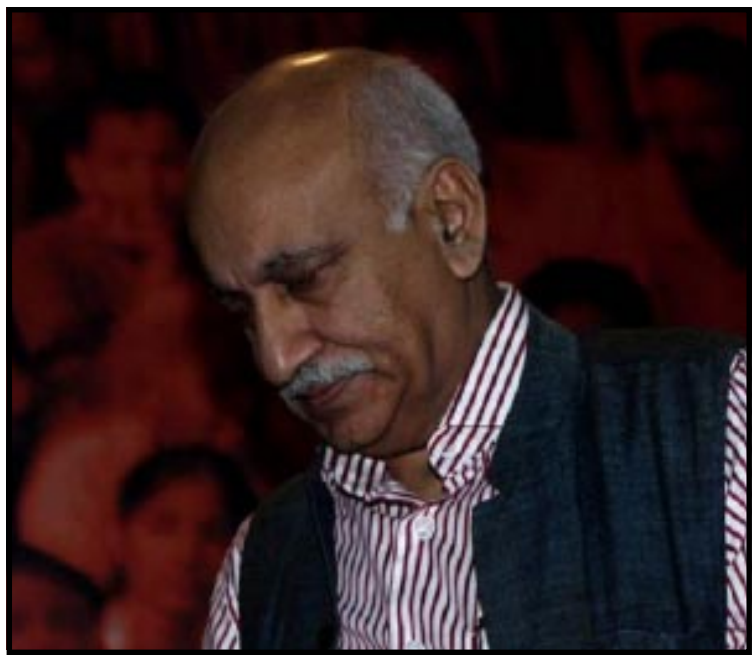

मेरे "एशियन एज" में काम करने के तीसरे साल दफ्तर की कल्चर ने घर पर हमला बोल दिया। उनकी नजरें मुझ पर आ पड़ीं। और इसके साथ ही मेरा डरावना दौर शुरू हो गया। मेरी डेस्क बिल्कुल उनकी केबिन के सामने शिफ्ट कर दी गयी। सीधी स्थिति में बिल्कुल उनकी डेस्क के विपरीत। इस तरह से जिससे उनके रूम का दरवाजा अगर थोड़ा भी खुलता तो हमारे चेहरे एक दूसरे के सामने होते।

वो अपने डेस्क पर बैठ जाते और हर समय मुझे देखते रहते थे। अक्सर "एशियन एज" के इंट्रानेट नेटवर्क पर अश्लील संदेश भेजते रहते। उसके बाद मेरी असहाय स्थिति को देखते हुए उसका साहस और बढ़ गया। उसने बातचीत के लिए मुझे अपनी केबिन (जिसका दरवाजा वो हमेशा बंद कर देता था।) में बुलाना शुरू कर दिया। जिसमें ज्यादातर बातें बिल्कुल निजी होती थीं। जैसे मेरी पारिवारिक पृष्ठभूमि और मैं कैसे काम कर रही हूं और अपने माता-पिता की इच्छा के खिलाफ जाकर दिल्ली में रह रही हूं।

कई बार वो मुझे अपने बिल्कुल सामने बैठा लिया करता था जब वो अपना साप्ताहिक स्तंभ लिख रहा होता था। इसके पीछे विचार ये था कि उसकी केबिन के आखिरी में दूर रखी ट्राइपोड पर बड़ी डिक्शनरी से शब्दों को देखने की जरूरत होगी, तो खुद पैदल चलकर जाने की जगह वो मुझसे कहेगा।

डिक्शनरी इतनी नीचे रखी गयी थी कि शब्द देखने के लिए किसी को या तो बिल्कुल झुकना पड़ता था या फिर उंकड़ू बैठ जाना होता था और उसकी पीठ अकबर की तरफ होती थी। एक दिन 1997 की सर्दी में डिक्शनरी पर मैं आधी झुकी हुई थी वो छुपकर मेरे पीछे आया और उसने मेरी कमर पकड़ ली। मैं भयंकर तरीके से डर कर कांपने लगी और किसी तरह से अपने पैर पर खड़े होने की कोशिश की। उसने मेरे स्तन से हिप तक अपने हाथ फेर दिए। मैंने उसके हाथ को दूर हटाने की कोशिश की लेकिन उसके हाथ मेरी कमर पर बिल्कुल चिपक गए थे। उसके अंगूठे मेरे स्तनों के किनारे को रगड़ रहे थे।

न केवल दरवाजा बंद था बल्कि उसके (अकबर के) पिछले हिस्से ने भी उसे ब्लॉक कर रखा था। आतंक के उन कुछ क्षणों में सभी तरह के विचार मेरे दिमाग में दौड़े। आखिर में उसने मुझे छोड़ दिया। इस पूरे दौरान उसकी धूर्ततापूर्ण मुस्कान कभी उसके चेहरे से नहीं गयी। मैं उसके केबिन से बाहर निकलकर चीखने और आंखों को साफ करने के लिए शौचालय में भागी। इस आतंक और हिंसा ने मुझे बिल्कुल अंदर से परेशान कर दिया। मैंने खुद को समझाया कि ये फिर नहीं होगा और मेरे प्रतिरोध ने उसे बता दिया था कि मैं उसकी गर्लफ्रेंडों में एक नहीं थी। लेकिन अभी मेरे डरावने सपने की सिर्फ शुरुआत भर हुई थी।

अगली शाम उसने मुझे अपने केबिन में बुलाया। मैंने दरवाजा खटखटाया और प्रवेश कर गयी। वो दरवाजे के बिल्कुल पास में खड़ा था। और मैं कुछ प्रतिक्रिया दे पाती उससे पहले ही उसने दरवाजा बंद कर दिया। और मैं उसके शरीर और दरवाजे के बीच फंस गयी। मैंने आराम से निकलने की कोशिश की लेकिन उसने मुझे पकड़ लिया और मुझे किस करने के लिए झुका।

अपने मुंह को बिल्कुल बंद करने के साथ ही मैं चेहरे को दूसरी तरफ करने की कोशिश कर रही थी। संघर्ष जारी रहा लेकिन ज्यादा सफलता नहीं मिली। पैंतरेबाजी की वहां कोई जगह नहीं थी। क्योंकि मेरी शरीर दरवाजे के बिल्कुल विपरीत दिशा में थी। एक बिंदु पर उसने मुझे जाने दिया। आंख में आंसू लेकर मैं बाहर दौड़ पड़ी। दफ्तर के बाहर। सूर्या किरन बिल्डिंग के बाहर एक पार्किंग स्थल पर। एक अकेला स्थान पाकर मैं फुटपाथ पर बैठ गयी और चीख-चीख कर रोने लगी।

मेरा पूरा जीवन मेरी आंखों के सामने से गुजर गया। मैं अपने परिवार में पहली शख्स थी जो आगरा से दिल्ली पढ़ने के लिए आयी थी। और उसके बाद काम करने। पिछले तीन सालों में मैंने घर में बहुत सारी लड़ाइयां लड़ी थीं। जिससे दिल्ली में रहने और काम करने के योग्य बनी थी। मेरे परिवार में महिलाओं ने केवल पढ़ाई की थी लेकिन काम कभी नहीं किया था।

छोटे शहरों के व्यवसायी परिवारों में लड़कियां हमेशा अरेंज मैरेज कर सेटिल हो जाती हैं। मैंने पितृसत्ता के खिलाफ संघर्ष किया था। मैंने अपने पिता से पैसे लेने से इंकार कर दिया था क्योंकि उसे मैं अपने बल पर पूरा करना चाहती थी। मैं एक सफल और प्रतिष्ठित जर्नलिस्ट बनना चाहती थी। मैं काम छोड़कर लूजर की तरह घर नहीं लौटना चाहती थी।

मेरी एक सहयोगी संजरी चटर्जी मेरा पीछा करते पार्किंग में पहुंच गयी। उसने मेरी आंखों में आंसू के साथ केबिन से बाहर आते मुझे देख लिया था। वो कुछ देर मेरे पास बैठी रही। उसने सुझाव दिया कि तुम इसके बारे में सीमा मुस्तफा को क्यों नहीं बताती। शायद वो अकबर से बात कर सकें और एक बार अगर वो जान जाते (अकबर) हैं कि वो (सीमा मुस्तफा) जानती हैं।

शायद वो पीछे हट जाएं। सीमा उस समय ब्यूरोचीफ थीं। हम दोनों वापस दफ्तर आए। मैं उनके कक्ष में गयी और उन्हें अपनी पूरी कहानी बतायी। उन्होंने मुझे सुना। वो चकित नहीं थीं। उन्होंने कहा कि ये पूरा मेरा निजी मामला है। और मैं क्या चाहती हूं उसे मुझे तय करना है। ये 1997 था। मैं बिल्कुल अकेली, उलझन में, असहाय और भीषण रूप से डरी हुई थी।

आखिर में मैं अपनी डेस्क पर लौट आयी। मैंने "एशियन एज" के नेटवेयर मेसेज सिस्टम से एक संदेश भेजा। मैंने उन्हें बताया कि एक लेखक के तौर पर मैं उनका कितना सम्मान करती हूं, उनका ये व्यवहार मेरे दिमाग में उनकी छवि को कितना खराब करता है और मैं चाहती हूं कि आइंदा वो मेरे साथ इस तरह का व्यवहार न करें।

उन्होंने मुझे तुरंत केबिन में बुलाया। मैंने सोचा कि वो मुझसे माफी मांगेंगे। मैं गलत थी। मेरे विरोध से वो दुखी दिख रहे थे और मुझे एक लेक्चर देना शुरू कर दिए कि मैं कैसे उनको ये सुझाव देकर कि उनकी भावनाएं मेरे लिए असली नहीं हैं, अपमानित कर रही हूं।

उस रात घर लौटने के रास्ते में मैंने आखिरी रूप से ये स्वीकार कर लिया कि चीजें मेरे नियंत्रण से बाहर चली गयी हैं। मुझे एक दूसरी नौकरी तलाशनी होगी। और इसलिए मैंने उसकी तलाशी भी शुरू कर दी। "एशियन एज" के दफ्तर में बिताया गया प्रत्येक क्षण बहुत डरावना था। हर समय जब भी वो अपनी केबिन में बुलाते मैं सौ बार मर जाती। मैं उनके कमरे में प्रवेश करते समय दरवाजे को थोड़ा खुला रखती थी और मेरा हाथ दरवाजे के नॉब पर हुआ करता था। इसने उन्हें अचंभित कर दिया। कभी-कभी वो दरवाजे तक आ जाते और अपना हाथ मेरे हाथ पर रख देते। कभी-कभी वो अपनी शरीर को मेरी शरीर के साथ रगड़ने लगते। कभी-कभी अपनी जीभ को मेरे सिकुड़े होठों पर फेरने लगते और हर समय मैं उन्हें दूर धकेलती और बचकर कमरे से बाहर निकलने की कोशिश करती।

उसके बाद मेरे सहयोगी जो अब मेरे गार्जियन हो गए थे उन्होंने एक चाल चली। जब भी मैं उनके केबिन में बुलायी जाती उनमें से एक कुछ क्षणों का इंतजार करती और फिर एक या किसी दूसरे बहाने मेरे पीछे आ जाती। वो मेरी सेफ्टी वाल्व बन गयी थी।

लेकिन ये कुछ ही दिनों तक काम किया। इस बात को महसूस करते हुए कि वो शारीरिक रूप से अपना रास्ता नहीं पा रहा है उसने भावनात्मक रणनीति का इस्तेमाल करना शुरू किया। एक शाम उसने मुझे अपने दफ्तर में बुलाया और कहा कि मैं अजमेर की दरगाह जाकर उसके लिए एक धागा बांधू। वो किसी दूसरे पर इसके लिए विश्वास नहीं कर सकता है। अजमेर जाने का बहाना कर मैं घर पर ही रुकी रही। लेकिन किसी तरह से उसने मेरा झूठ पकड़ लिया। और धार्मिक पाप करने का जमकर ताना मारा।

अब मैं विरोधासी भावनाओं के मकड़ जाल में फंस गयी थी- मैंने गलती की थी। मैं असुरक्षित थी। और सबसे ज्यादा मैं भीषण रूप से डरी हुई थी। दफ्तर बहुत ज्यादा दिनों तक मेरे लिए अब स्वतंत्रता का स्थान नहीं था। ये टार्चर चैंबर में बदल चुका था। मैं उससे बाहर निकलने के लिए बेताब था। लेकिन रास्ता नहीं मिल रहा था। मैं मूर्खतापूर्ण तरीके से अभी भी इस बात में विश्वास कर रही थी कि एक बार अगर दूसरी नौकरी मिल जाएगी तो मैं सम्मान पूर्वक नौकरी छोड़ दूंगी।

क्योंकि मैं लगातार उसके शारीरिक प्रयासों का विरोध (अपने सीमित तरीके से) कर रही थी उसने मेरी रक्षाकवच को तोड़ने के लिए एक और तरीका अपनाया- वीनू संडल "एशियन एज" की टैरो कार्ड रीडर थीं जिनका एक साप्ताहिक स्तंभ प्रकाशित होता था। और एक समय के बाद वो अकबर की निजी ज्योतिषी हो गयी थीं। एक खास डरावनी दोपहरी को जब उसने मेरी सुरक्षा करने वाली सहयोगियों को दफ्तर से भगा दिया जिससे वो मुझे अपने चंगुल में लेने में सफल रहे। वीनू मेरी डेस्क पर आयी और बताया कि अकबर सचमुच में मुझसे प्यार करते हैं। और मुझे उन्हें इतना समय देना चाहिए जिससे मैं जान सकूं कि वो मेरी कितनी परवाह करते हैं।

इस जानवर से मैं बिल्कुल दुखी हो गयी थी। क्या वो सचमुच ऐसा होगा? उसकी पात्रता का भाव इतना बड़ा हो सकता है कि अपनी दलाली के लिए वो एक ज्योतिषी को काम पर रखे? उस बिंदु पर मैं किसी भी चीज को लेकर निश्चित नहीं थी। मैं अगर लगातार उसका विरोध करती रही तब क्या होगा? क्या वो मेरा बलात्कार कर देगा? क्या मुझे चोट पहुंचाएगा? मैंने पुलिस के पास भी जाने के बारे में सोचा। लेकिन डर गयी। अगर वो बदला लेने पर उतारू हो गया? मैंने अपने माता-पिता को बताने के बारे में सोचा लेकिन मैं जानती थी कि उससे अभी किसी तरीके से शुरू हुए मेरे कैरियर का भी अंत हो जाएगा।

बहुत सारे रतजगों के बाद मैं इस नतीजे पर पहुंची कि "एशियन एज" में नौकरी करते हुए दूसरी नौकरी की तलाशी कोई अच्छा विकल्प नहीं है। मुझे तत्काल छोड़ देना चाहिए। इसलिए मैंने साहस जुटाया और उसे बताया कि मैं नौकरी छोड़ रही हूं। उसने अपना संतुलन खो दिया। वो चिल्लाया तभी मैंने खुद को कुर्सी के भीतर समेट लिया। उसके बाद वो भावुक हो गया और मुझे पकड़ कर छोड़कर नहीं जाने की विनती करने लगा। मैं उसके कमरे से जब बाहर आयी तो मेरी हड्डियां कंपकंपा रही थीं। चीजें कभी न खत्म होने वाली डरावनी रात में बदलती जा रही थीं जो मेरे जीवन के हर पक्ष को प्रभावित कर रही थीं। मैंने अपनी भूख खो दी थी। मेरी नींद गायब हो गयी थी। मैंने अपने मित्रों के साथ बाहर जाना छोड़ दिया था।

उसके बाद और भी बुरा हुआ। अकबर ने मुझे बताया कि वो अहमदाबाद से एक संस्करण लांच कर रहे हैं और चाहते हैं कि मैं वहां शिफ्ट हो जाऊं। मेरे माता-पिता द्वारा वहां शिफ्ट होने की इजाजत न देने समेत हर तरीके से किए गए विरोध को किनारे कर दिया गया। जैसा कि उसने चिल्लाकर अपनी योजना बताना शुरू कर दिया। मुझे अहमदाबाद में एक घर दिया जाएगा और मेरा सारा कुछ कंपनी संभालेगी। और जब भी वो वहां आएगा वो मेरे साथ रुकेगा। मेरी बदहवाशी छत को छूने लगी। उस आतंक के क्षणों में मैंने अपने भीतर शांति के एक तालाब की तलाश कर ली। मैंने विरोध करना बंद कर दिया। धीरे-धीरे कुछ सप्ताहों तक मैंने अपनी डेस्क खाली करनी शुरू कर दी। अपनी किताबों आदि को थोड़ा-थोड़ा कर अपने घर लेती गयी। इस तरह से अहमदाबाद रवाना होने से एक शाम पहले मेरी पूरी डेस्क खाली हो चुकी थी। अकबर के निजी सचिव को अपने इस्तीफे वाले सीलबंद लिफाफे को देने के बाद मैंने रोजाना के समय पर दफ्तर छोड़ दिया। मैंने उससे निवेदन किया कि वो लिफाफे को अकबर को अगली आने वाली शाम को दे देगा। जब ये पता चल जाएगा कि मैंने अहमदाबाद की फ्लाइट नहीं पकड़ी।

अगले दिन, मैं अपने घर पर रही। शाम को अकबर ने मेरे घर के नंबर पर फोन किया। उसने दफ्तर से मेरे नंबर को हासिल कर लिया था। वो बिल्कुल बड़बड़ाने के अंदाज में कभी नाराज होता और कभी उसने भावना दिखाने की कोशिश की। मैं बिल्कुल डरी हुई थी। अगर वो घर पर आ गया तब? मैं पूरी रात जगी रही और अगली सुबह की पहली ट्रेन को पकड़ कर अपने माता-पिता के पास चली गयी।

घर पर किसी ने मुझसे कुछ नहीं पूछा। मेरे मां-बाप जान गए कि सब कुछ ठीक नहीं चल रहा है। लड़ाई हम लोगों के बाहर चली गयी थी। मैं कुछ हफ्ते घर रही। उसके बाद जब मैंने अपने पिता को बताया कि मैं अपनी नौकरी पर दिल्ली लौटना चाहती हूं तो उन्होंने उसका विरोध नहीं किया। उन्होंने केवल यही कहा कि दूसरी नौकरी ढूंढ लो। और मैं रो पड़ी।

पिछले 21 सालों में मैंने ये सब कुछ अपने पीछे रखा हुआ था। मैंने तय कर लिया था कि मुझे एक पीड़ति नहीं बनना है और न ही एक राक्षस का व्यभिचार मेरे कैरियर को खराब कर सकता है। हालांकि कभी-कभी मुझे डरावने सपने आते थे। शायद अब वो आने बंद हो जाएं।

(पत्रकार गजाला वहाब की ये कहानी "दि वायर" अंग्रेजी में प्रकाशित हुई है। वहां से इसे साभार लिया गया है।)